UNIVERSAL LIBRARY

OU_176288

UNIVERSAL LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H 491.2 / S53A Accession No. G.H. 2087

Author शर्मा, आर्येन्द्र।

Title अलंकार-प्रकाश। 1936

This book should be returned on or before the date last marked below.

अलंकार-प्रकाश

और

पिंगल-कौमुदी

लेखक

आर्येन्द्र शर्मा

हिन्दी साहित्य सम्मेलन

प्रयाग

प्रकाशक
हिन्दी साहित्य सम्मेलन
प्रयाग

द्वितीय संस्करण

मुद्रक
गिरिजाप्रसाद श्रीवास्तव,
हिन्दी साहित्य प्रेस,
प्रयाग

द्वितीय संस्करण

अलंकार और पिंगल का काव्य में विशेष स्थान है। साहित्य और काव्य के अध्ययन के लिये इनकी जानकारी भी अनिवार्य है। प्रस्तुत पुस्तक सम्मेलन की प्रथमा परीक्षा के पाठ्यक्रम में स्वीकृत है। विद्यार्थियों ने इसे पसन्द किया और इसका प्रथम संस्करण समाप्त हो गया। इसलिये पाठकों के संमुख इसका द्वितीय संस्करण प्रस्तुत किया जाता है। हमें आशा है कि विद्यार्थी इससे अधिकाधिक लाभ उठा कर अलंकार-पिंगल की प्रारंभिक जानकारी प्राप्त करेंगे।

ज्योतिप्रसाद मिश्र निर्मल
साहित्यमंत्री

हिन्दी साहित्य सम्मेलन
१५-९-४०

प्राक्कथन

प्रस्तुत पुस्तक अलङ्कार तथा पिङ्गल सम्बन्धी प्रारम्भिक ज्ञान के लिये संकलित की गई है। इसका विशेष उपयोग हिन्दी साहित्य सम्मेलन के प्रथमा-परीक्षार्थियों के लिये है। क्योंकि विषय-निर्धारण आदि प्रथमा के पाठ्यक्रम के ही अनुसार किया गया है। पाठ्यक्रम के अतिरिक्त भी कुछ बातों का समावेश है, पर इस बात का ध्यान रखा गया है कि पुस्तक यथासम्भव संक्षिप्त और सुबोध रहे।

अलङ्कार सम्बन्धी प्रारम्भिक पुस्तक लिखने में सबसे बड़ी कठिनता उपयुक्त उदाहरण चुनने में होती है। प्रत्येक ग्रन्थों के प्रायः सभी उदाहरण शृंगारपरक और अप्रौढ़ विद्यार्थियों के लिये सर्वथा अनुचित होते हैं। यही कारण है कि संकलन में अधिकतर उदाहरण रामायण से लिये गये हैं।

पिङ्गल-भाग में प्रस्तार, मर्कटी आदि विषयों का समावेश न करके केवल आवश्यक तथा बहुप्रयुक्त छंदों की विवेचना की गई है। इस भाग में 'भानु' जी के 'छंद-प्रभाकर' से विशेष सहायता ली गई है, तदर्थ लेखक उनका कृतज्ञ है। छंदों के उदाहरण प्रायः 'रामचन्द्रिका' और 'प्रिय प्रवास' से लिये गये हैं।

पिङ्गल और अलङ्कार में परस्पर कोई विशेष सम्बन्ध न होने पर भी प्रथमा-परीक्षार्थियों की सुविधा के ध्यान से इन दोनों भागों को एक साथ प्रकाशित किया गया है। आशा है यह संकलन इन दोनों विषयों के सामान्य परिचय के लिये उपयोगी सिद्ध होगा।

प्रयाग,
२६ मार्च १९३९ } आर्येन्द्र शर्मा

अलंकार-प्रकाश

और

पिंगल-कौमुदी

काव्य

काव्य क्या है, इस विषय में विद्वानों के भिन्न भिन्न मत हैं। पर साधारण रूप से यह कहा जा सकता है कि सुन्दर और हृदय-ग्राही ढङ्ग से कहा हुआ, रसयुक्त वाक्य काव्य है।

काव्य में सौन्दर्य की उत्पत्ति गुणों से होती है। यह सौंदर्य अलङ्कारों द्वारा बढ़ाया भी जा सकता है। रस को 'काव्य की आत्मा' कहा गया है; काव्य में रस का होना आवश्यक है। बिना रस का भी काव्य यद्यपि हो सकता है, पर वह उत्तम श्रेणी का नहीं गिना जाता। अर्थ सहित शब्दों के समूह को वाक्य कहते हैं।

इस प्रकार काव्य चार पदार्थों से मिल कर बनता है, शब्द, अर्थ, रस और गुण। इन चारों में से एक का भी अभाव होने

पर काव्य अधूरा ही रह जाता है। अलङ्कारों से काव्य की सुन्दरता बढ़ती है, किन्तु अलङ्कारों के बिना भी सुन्दर काव्य हो सकता है। अलङ्कार काव्य का अनिवार्य अंग नहीं है।

यदि काव्य की तुलना मनुष्य से की जाय तो वाक्य (शब्द + अर्थ) को शरीर ; रस को आत्मा ; गुणों को दया, वीरता, उदारता आदि (आत्मा के गुण); और अलङ्कारों को कुण्डल आदि गहने कह सकते हैं।

'शब्द' और 'अर्थ' की व्याख्या करने की आवश्यकता नहीं हम 'रस' और 'गुण' की सामान्य रूप से और 'अलङ्कार' की कुछ विस्तार से विवेचना करेंगे।

रस

जब कोई प्रधान मनोभाव अन्य सहायकों के संयोग से एक अलौकिक, हृदयग्राही चमत्कार की उत्पत्ति करता है, तब उसे 'रस' कहते हैं।

यह 'प्रधान मनोभाव' नौ माने गये हैं, और उनमें से प्रत्येक एक 'रस' में परिणत हो जाता है, इसलिये रस भी नौ ही हैं।

१. रति (प्रेम) शृंगार रस में,
२. हास हास्य रस में,
३. क्रोध रौद्र रस में,

४. शोक करुण रस में,

५. उत्साह वीर रस में,

६. भय भयानक रस में,

७. जुगुप्सा (घृणा) बीभत्स रस में,

८. विस्मय अद्भुत रस में, और

९. निर्वेद (वैराग्य) शान्त रस में परिणत होता है।

इन प्रधान मनोभावों की 'सहायक' चार वस्तुएँ हैं—

१. 'आलम्बन' अथवा आश्रय—जैसे 'शोक' का आश्रय मृत बन्धु जन; 'उत्साह' का आश्रय प्रतिद्वन्द्वी या शत्रु।

२. 'उद्दीपन' अथवा उत्तेजक—जैसे 'शोक' का उत्तेजक मृत-व्यक्ति के गुणादि का स्मरण, या उसके वस्त्रादि का देखना; 'उत्साह' का उत्तेजक शत्रु की गर्वोक्ति और चेष्टादि।

३. 'अनुभाव' अर्थात् मनोभावों के कारण उत्पन्न हुई चेष्टाएँ—जैसे 'शोक' का अनुभाव रोना; 'उत्साह' का अनुभाव शत्रु की उपेक्षा और स्पर्धा आदि।

४. 'सञ्चारी' अथवा 'व्यभिचारी' भाव, अर्थात् नौ प्रधान मनोभावों के पोषक अन्य सहायक मनोभाव, जो किसी एक रस में नियम से न रह कर यथानुकूल अन्य रसों में भी 'सञ्चार' करते हैं—जैसे 'शोक' का सञ्चारी जड़ता, चिन्ता आदि; 'उत्साह' का सञ्चारी धैर्य, गर्व आदि।

उदाहरण—

पतिशिर देखत मंदोदरी। मूर्छित विकल धरणि ग्वसि परी।
पतिगति देखत करहि पुकारा। छूटे केश न वेष सँभारा।
तव बल नाथ डोल नित धरणी। तेजहीन पावक शशि तरणी।
जगत विदित तुम्हारि प्रभुताई। सुत परिजन बल वरणि न जाई॥

यह करुण-रस का वर्णन है। स्थायी भाव शोक है। उस शोक का आलम्बन मन्दोदरी का पति, रावण है। रावण के बल, प्रताप का स्मरण उद्दीपन है। मंदोदरी का रोना और मूर्छित होकर गिरना अनुभाव है। मोह, विषाद आदि व्यभिचारी भाव हैं।

गुण

गुणों से काव्य में सौंदर्य की उत्पत्ति होती है। जैसे दया, उदारता आदि गुणों के बिना मनुष्य की आत्मा का कोई सौंदर्य नहीं, वैसे ही गुणों के बिना काव्य की आत्मा, रस, में सुन्दरता का अभाव रहता है।

प्राचीन आचार्यों ने दस शब्द-गुण और दस अर्थ-गुण माने हैं, पर नवीन विद्वान् केवल तीन ही गुण मानते हैं।

१—'माधुर्य' में चित्त को आल्हादित करने वाले, मधुर वर्णों का प्रयोग होता है, जैसे :—

रनित भृङ्ग घंटावली झरत दान मधुनीर।
मंद-मंद आवत चल्यो कुञ्जर कुञ्ज समीर॥

'माधुर्य' शृंगार, करुण और शान्त रस में उपयुक्त होता है।

२—'ओज' में चित्त को उद्दीप्त, उत्साहित करने वाले ट, ठ, ड, ढ, श, ष, आदि तथा संयुक्त, कठोर वर्णों का प्रयोग होता है। जैसे :—

बीर बली मुख जुद्ध विरुद्धे, देखियत बिपुल काल जनु क्रुद्धे।
देखि चले सनमुख कपि भट्टा, प्रलय काल के जनु घन घट्टा॥
लागत बान वीर चिक्करहीं घुर्मि घुर्मि जहँ तहँ महि परहीं।
जंबुक निकर कटक्कट कट्टहि, खाहि हुहाहिं अघाहि दपट्टहिं॥

'ओज' वीर, बीभत्स और रौद्र रस में उपयुक्त होता है।

३—'प्रसाद' में चित्त को व्याप्त करने वाले, सुनते ही समझ में आ जाने वाले शब्दों का प्रयोग होता है। जैसे :—

सघन कुंज, छाया सुखद, सीतल मन्द समीर।
मन ह्वै जात अजौं वहै वा जमुना के तीर॥

'प्रसाद' प्रायः सभी रसों में उपयुक्त होता है।

———

अलङ्कार

शब्द और अर्थ की सुन्दरता बढ़ाना अलङ्कारों का प्रयोजन है। गहने पहनने से जैसे शरीर की सुन्दरता बढ़ जाती है, वैसे ही अलङ्कारों के द्वारा काव्य (शब्द और अर्थ) की शोभा बढ़ती है। यह बात ध्यान में रखनी चाहिये कि अलङ्कारों से काव्य-शोभा की उत्पत्ति नहीं होती। जैसा पहले कहा जा चुका है, काव्य-शोभा गुणों से उत्पन्न होती है। फलतः अलङ्कारोंका काव्य में होना अनिवार्य नहीं। गहने पहनने से शरीर की सुन्दरता बढ़ अवश्य जाती है, पर न पहनने से नष्ट नहीं हो जाती। उल्टे गुणों के द्वारा उत्पन्न हुए सौन्दर्य के न होने पर अलङ्कारों का सोना वैसा ही है जैसे कुरूप व्यक्ति को गहनों से लाद देना। अलङ्कारों में चित्ताकर्षकता और चमत्कार का होना अत्यन्त आवश्यक है।

अलङ्कार दो प्रकार के होते हैं, शब्दालङ्कार और अर्थालङ्कार। शब्दालङ्कारों में सब चमत्कार शब्दों पर ही आश्रित रहता है। यदि उन शब्दों को बदल कर उन्हीं के समानार्थक अन्य शब्द रख दिये जायँ तो अलङ्कार नहीं रहता। जैसे :—

कहत धतूरे सों कनक, गहनो गढ़ो न जाय।

यहाँ 'कनक' में श्लेष शब्दालङ्कार है। 'कनक' का अर्थ है, सोना और धतूरे का वृक्ष। यदि 'कनक' के स्थान पर 'काञ्चन' या 'सुवर्ण' आदि अन्य कोई समानार्थक शब्द रख दिया जाय तो यह अलङ्कार नहीं रहेगा।

अर्थालङ्कारों में चमत्कार अर्थ पर आश्रित होता है, इसलिये शब्दों के बदल देने पर भी अलङ्कार बना रहता है। जैसे :—

सोभा सींव सुभग दोउ वीरा, नील-पीत-जलजात-सरीरा।

यहाँ 'नीले और पीले जलजातों (कमलों) के समान शरीर वाले' यह उपमा अर्थालङ्कार है। 'जलजात' को बदल कर 'कमल' 'सरोज' आदि कोई भी शब्द रखा जा सकता है।

———

*

शब्दालङ्कार

१—अनुप्रास

शब्दों में स्वरों की असमता होने पर भी यदि व्यंजनों की समता अथवा आवृत्ति हो तो 'अनुप्रास' अलङ्कार होता है।

यह समता (आवृत्ति) एक व्यंजन की भी हो सकती है और एक से अधिक की भी। एक से अधिक व्यंजनों की आवृत्ति दो तरह से हो सकती है :—एक, जिसमें व्यंजनों का क्रम वही रहे, जैसे "भारी भार भर्यो बनिक"–यहाँ 'भ' और 'र' व्यंजनों की उसी क्रम से आवृत्ति है; दूसरी, जिसमें व्यंजन वही रहें पर क्रम बदल जाय, जैसे:—"अलका की किस विकल विरहिणी की पलकों का ले अवलम्ब"—यहाँ 'अलका', 'विकल', और पलक शब्दों में 'ल' और 'क' व्यंजन की आवृत्ति है, पर क्रम बदल गया है। जहाँ एक ही व्यंजन की आवृत्ति होती है, वहाँ तो क्रम का प्रश्न ही नहीं रह जाता।

अनुप्रास पाँच प्रकार का है :—

छेकानुप्रास, वृत्यनुप्रास, अन्त्या प्रास, लाटानुप्रास और श्रुत्यनुप्रास।

(क) 'छेकानुप्रास' में दो या अधिक व्यंजनों की, उसी क्रम से, एक बार आवृत्ति होती है। जैसे:—

नव उज्जल जल धार हार हीरक सी सोहति।

यहाँ—'जल', 'जल' और 'हार', 'हीर—' में 'ज', 'ल' तथा 'ह', 'र' व्यंजनों की उसी क्रम से एक बार आवृत्ति है।

अथवा जैसे:—

कंकन किंकिनि नूपुर धुनि सुनि।

यहाँ तीन व्यंजनों की उसी क्रम से, एक बार आवृत्ति है।

(ख) 'वृत्त्यनुप्रास' छेकानुप्रास का उलटा है। यह तीन प्रकार से हो सकता है:—

(१) अनेक व्यंजनों की एक बार पर क्रम के बिना आवृत्ति, जैसे:—

सुमन नमित नव वनविटपि निज सौरभ के भार।

यहाँ '–मन', 'नमि–'; 'नव', 'वन'; और '–रभ', 'भार' व्यंजनों की बिना क्रम के आवृत्ति है। छेकानुप्रास में अनेक व्यंजनों की उसी क्रम से आवृत्ति होती है।

(२) अनेक व्यंजनों की उसी क्रम से, पर कई बार आवृत्ति, जैसे:—

ऐसो जो हौं जानतो कि जैहै तू विषै के संग,
एरे मन मेरे, हाथ पाँव तेरे तोरतो।

आजु लौं हौं कल नरनाहन की नाहीं सुनि,
नेह सां निहारि हारि बदन निहोरतो ॥
चलन न देतो 'देव' चंचल अचल करि,
चाबुक चितावनीन मारि मुँह मोरतो।
भारी प्रेम पाथर नगारो दै गरे सों बाँधि,
राधावर विरुद के बारिधि में बोरतो ॥

यहाँ दूसरे चरण में '–नाह–', 'नाहीं', 'नेह', 'निहा–' में 'न' और 'ह' की '–हारि' 'हारि', 'होर' में 'ह' और 'र' की; तीसरे चरण में 'च' और 'ल' की; तथा चौथे चरण में 'व' और 'र' की उसी क्रम से कई बार आवृत्ति है। छेकानुप्रास में केवल एक बार आवृत्ति होती है।

(३) केवल एक व्यंजन की एक बार या कई बार आवृत्ति जैसे:—

अरुन सरोरुह कर चरन दृग खंजन मुख चन्द।
समय आय सुन्दर सरद काहि न करत अनंद॥

पूर्वार्ध में 'र' की कई बार और 'ख' की एक बार, तथा उत्तरार्ध में 'स' की कई बार और 'क' की एक बार आवृत्ति है। छेकानुप्रास में अनेक व्यंजनों की आवृत्ति होती है।

(ग) 'अन्त्यानुप्रास' हिन्दी के छन्दों में प्रायः सदा ही होता है, जिसे 'तुक', कहते हैं। किसी छन्द के चरण या अर्धभाग के अन्त में, पहिले और बाद में आने वाले स्वरके साथ यदि एक या

अधिक व्यंजनों की आवृत्ति हो तो अन्त्यानुप्रास होता है। जैसे:—

बिनु पद चलै सुनै बिनु काना।
कर बिनु कर्म करै बिधि नाना॥

यहाँ '—आना' की अन्त में आवृत्ति है। अथवा जैसे ऊपर वृत्त्यनुप्रास के उदाहरण में, "ऐसो जो हौं जानतो" इस छन्द में '—ओरतो' की चारों चरणों के अन्त में आवृत्ति है।

वास्तव में इस अनुप्रास को अलङ्कारों की श्रेणी में न रखना ही ठीक है, क्योंकि अलङ्कार में चमत्कार का होना आवश्यक है और हिन्दी के 'अन्त्यानुप्रास' में कोई चमत्कार नहीं है।

(घ) 'लाटानुप्रास' में स्वर और व्यंजन दोनों की ठीक उसी क्रम से आवृत्ति होती है, अर्थात् एक पूरा शब्द ज्यों का त्यों दुहराया जाता है। साथ ही उस शब्द का अर्थ भी वही रहता है, केवल उसके तात्पर्य अथवा अन्वय में भेद हो जाता है। जैसे:—

दीनबन्धु बिन दीन की को रहीम सुधि लेइ।

यहाँ 'दीन' शब्द की ज्यों की त्यों आवृत्ति है, अर्थ में भी कोई भेद नहीं है। केवल अन्वय में भेद है। एक जगह—'दीनबन्धु' में—'दीन' शब्द समास में आया है और दूसरी जगह बिना समास के, 'सुधि' के साथ सम्बन्ध में आया है। इसी प्रकार,

"कान्ह भयो प्रानमय, प्रान भयो कान्ह मय,
हिय मैं न जान्यों परै, कान्ह है कि प्रान है ।

में 'कान्ह' और 'प्रान' शब्दों की आवृत्ति है, अर्थ भी वही है, पर अन्वय में भेद है ।

(ङ) 'श्रुत्यनुप्रास' में ऐसे व्यंजनों की आवृत्ति होती है जिनका उच्चारणस्थान एक हो ।

क, ख, ग, घ, ङ, ह का उच्चारणस्थान कण्ठ है ;
च, छ, ज, झ, ञ, य, श का तालु ;
ट, ठ, ड, ढ, ण, र, ष का मूर्धा ;
त, थ, द, ध, न, ल, स का दन्त ; और
प, फ, ब, भ, म, का ओष्ठ ।

उदाहरण—

अंगद बचन विनीत सुनि रघुपति करुना सींव ।
प्रभु उठाय उर लायेउ सजल नयन राजीव ॥

यहाँ पूर्वार्ध में एक उच्चारणस्थान वाले, '–द', '–न', '–नीत', 'सुनि', '–ति', '–ना' और 'सी–' की आवृत्ति है। उत्तरार्ध में '–य' '–ये' '–ज–' '–य' और '–जी–' भी एक उच्चारणस्थान वाले हैं ।

२–यमक

किसी शब्द की या उसके कुछ अंश की ज्यों की त्यों

आवृत्ति हो, और जिसकी आवृत्ति हुई है वह या तो भिन्न अर्थ वाला हो, या निरर्थक हो जाय तो 'यमक' होता है।

उदाहरण—

वारि बराबर बारि है तापर अधिक बयारि।
रघुबर पार उतारियो मेरी ओर निहारि॥

यहाँ 'वारि' शब्द की आवृत्ति है। दोनों जगह अर्थ है, किन्तु भिन्न है। पहले 'वारि' का अर्थ है, नाव का किनारा; दूसरे का, पानी।

चिन्ता अनुचित, धरु धीरज उचित,
सेनापति ह्वै सुचित रघुपति गुन गाइये।
चारि वरदानि तजि पाय कमलेच्छन के,
पायक मलेच्छन के काहे को कहाइये॥

यहाँ 'अनुचित' शब्द के '–चित्त' अंश की आवृत्ति है, और यह अंश सब जगह निरर्थक है। उत्तरार्ध में 'पायकमलेच्छन' शब्द की आवृति है। पहला 'पाय' शब्द सार्थक है, उसका अर्थ है "पैर", पर दूसरा 'पाय–' 'पायक' (आश्रित) का अंश होने से निरर्थक है। इसी प्रकार पहला '–मलेच्छन' 'कमलेच्छन' (कमल की सी आंखों वाला) का अंश होने से निरर्थक है, पर दूसरा 'मलेच्छन' सार्थक है, उसका अर्थ है नीच मनुष्य।

ग्रीषम के भानु सो खुमान को प्रताप देखि,
तारे सम तारे गये मूँदि तुरकन के।

यहाँ दोनों 'तारे' सार्थक हैं पर अर्थ भिन्न है, एक का अर्थ है नक्षत्र और दूसरे का आँख की पुतली।

यमक और लाटानुप्रास दोनों में ही किसी शब्द की ज्यों की त्यों आवृत्ति होती है, पर भेद यह है कि यमक में आवृत्ति शब्द का अर्थ या तो कुछ रहता ही नहीं, या बिलकुल बदल जाता है, और लाटानुप्रास में अर्थ वही रहता है, केवल अन्वय या सम्बन्ध में भेद हो जाता है।

यमक में आवृत्ति करने में ड, ल में, र, ल में ब, व में कोई भेद नहीं माना जाता, क्योंकि इन अक्षरों का उच्चारण परस्पर बहुत मिलता है।

३-श्लेष

एक ही शब्द के या उसके अंश के दो या अधिक अर्थ होने पर 'श्लेष' अलङ्कार होता है। श्लेष दो तरह का होता है, शब्द श्लेष और अर्थ श्लेष। श्लिष्ट शब्द को बदल देने पर यदि दूसरा अर्थ न निकले तो 'शब्दश्लेष' और शब्द-परिवर्तन कर देने पर भी यदि दूसरा अर्थ ज्यों का त्यों बना रहे तो 'अर्थश्लेष' होता है। 'अर्थश्लेष' अर्थालङ्कारों में गिना जाता है। शब्द श्लेष, जैसेः—

मंगन देखे देत पट, भोगी कन कन जोर।
सुभ जन मन भाये दोऊ, दानी कृपण न कोर॥

अर्थात्, दानी और कृपण में कोई भेद नहीं है। दानी माँगने वालों को देख कर पट (वस्त्र) देता है, और कृपण मांगने वालों

को देखकर पट (घर के किवाड़) दे लेता है। दानी भोगी (धन का भोग करने वाला) होता है और 'कनक' अर्थात् सोना या धन 'न' (नहीं), जोड़ता; कृपण भी भोगी (सांप) बन कर 'कन कन', एक एक कण, जोड़ता है। दानी शुभ जनों के मन को भाता है ; कृपण को शुभ जनम नहीं भाता।

इस प्रकार यहाँ 'पट', 'भोगी', 'कनकन' 'सुभ जन मन' इन शब्दों में श्लेष है। 'पट' आदि को बदल कर 'वस्त्र' आदि शब्द रखने से श्लेष नहीं रहेगा, इसलिये यह 'शब्दश्लेप' है।

ध्यान रखना चाहिये कि श्लेप में दोनों अर्थ समान कक्षा वाले होते हैं।

दो अर्थ करने के लिये यदि किसी शब्द के टुकड़े करने पड़ें तो 'सभङ्गश्लेष' और एक ही पूरे शब्द के दो अर्थ निकलने पर 'अभङ्गश्लेप' होता है। ऊपर के उदाहरण में 'कनकन' में 'सभङ्ग-श्लेष' है—'कनक न', 'कन कन' इस प्रकार शब्द को तोड़ना पड़ता है। 'पट' में अभङ्गश्लेष है।

———

अर्थालङ्कार

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, अर्थालङ्कारों में चमत्कार अर्थ पर आश्रित होता है शब्दों के बदल देने पर भी अलङ्कार बना रहता है। अधिकांश अर्थालङ्कारों का आधार दो वस्तुओं का सादृश्य होता है। इस प्रकार के अलङ्कारों में उपमा मुख्य है।

१—उपमा

यदि दो भिन्न वस्तुओं की केवल समानता, एक ही वाक्य में और स्पष्ट शब्दों में दिखाई जाय तो उपमालङ्कार होता है। जैसे, "महापुरुष समुद्र के समान गम्भीर होते हैं।", यहाँ 'महापुरुष' और 'समुद्र' इन दो भिन्न वस्तुओं की समानता है। एक वस्तु की स्वयं उसी से समानता होने पर उपमा के बदले 'अनन्वयालङ्कार' माना जाता है, जैसे, "महापुरुष गम्भीरता में महापुरुषों के ही समान होते हैं", अथवा, "गम्भीरता में समुद्र के समान समुद्र ही है।"

उपमा में दो वस्तुओं की केवल समानता ही होनी चाहिये, भिन्नता भी होने पर उपमा के बदले 'व्यतिरेकालङ्कार' हो जाता है। जैसे, यदि कहा जाय कि 'महापुरुष' गम्भीरता में समुद्र के समान, पर समुद्र की सी भीषणता से रहित होते हैं, तो उपमा नहीं, किन्तु 'व्यतिरेक' माना जायगा।

वाक्य भी एक ही होना चाहिये। "महापुरुष समुद्र के समान गम्भीर होते हैं, और समुद्र महापुरुषों के समान गम्भीर होता है", इस प्रकार दो वाक्य होने पर उपमा नहीं, किन्तु 'उपमेयोपमा' मानी जाती है।

यह समानता स्पष्ट शब्दों में कही जानी चाहिये। "महापुरुषों को देखकर समुद्र को अपनी गम्भीरता का गर्व नहीं रहता" इस प्रकार कहने से भी उपमा नहीं होगी।

संक्षेप में उपमा के लिये यह चार बातें आवश्यक हैं:—

१. दो भिन्न वस्तुएँ।

२. केवल समानता, भिन्नता नहीं,

३. एक वाक्य, और

४. स्पष्ट कथन।

उपमा के चार अङ्ग होते हैं; उपमेय, उपमान, समान धर्म और सादृश्यवाचक शब्द।

जिसका वर्णन किया जाता है वह 'उपमेय' कहाता है, जैसे, ऊपर के उदाहरण में 'महापुरुष'।

जिसके साथ समानता बताई जाती है वह 'उपमान' होता है, जैसे, 'समुद्र'।

यह समानता जिस गुण या विशेषता के आधार पर की जाती है वह 'समान धर्म' कहाता है, जैसे 'गम्भीरता'। उपमेय और उपमान दोनों ही में रहने से इसे 'समान धर्म' कहते हैं।

समानता बताने वाले शब्दों को 'साहश्यवाचक' कहते है, जैसे ऊपर के उदाहरण में 'समान'; अन्य भी जैसे, 'तुल्य' 'सम' 'सहश' आदि।

जिस उपमा में यह चारों अङ्ग वर्तमान हों उसे 'पूर्णोपमा', और जिसमें इनमें से एक या अधिक अङ्ग न हों उसे 'लुप्तोपमा' कहते हैं।

ऊपर के उदाहरण में पूर्णोपमा है। 'महापुरुष' उपमेय; 'समुद्र' उपमान; 'गम्भीर' समान-धर्म; और 'समान' साहश्यवाचक शब्द; इस प्रकार चारों अङ्ग वर्तमान हैं। और भी जैसे,

धनुष पै ठाढ़े राम रबि से लसत आजु,
भोर के से नखत नरिन्द परे पियरे।

यहाँ 'राम' और 'नरिन्द' (राजा लोग) उपमेय हैं; 'रबि' और 'नखत' (नक्षत्र, तारे) उपमान; 'लसत' और 'पियरे परे' समान-धर्म; तथा 'से' साहश्यवाचक है।

'लुप्तोपमा' में इन चारों अङ्गों में से एक या अधिक का अभाव होता है, और वह अंग अनुमान से समझ लिया जाता है। जो अंग नहीं होते उन्हीं के आधार पर भिन्न भिन्न लुप्तोपमायें मानी जाती हैं, और उन्हीं के अनुसार लुप्तोपमाओं के नाम रखे जाते हैं। जैसे उपमान के न होने पर 'उपमान-लुप्ता'

समान धर्म के न होने पर 'धर्म लुप्ता', सादृश्यवाचक न होने पर 'वाचकलुप्ता', सादृश्यवाचक और उपमान दो के न होने पर 'वाचकोपमान लुप्ता' इत्यादि।

नील सरोरुह श्याम, तरुण अरुण वारिज नयन।

यहाँ सादृश्यवाचक शब्द, समान आदि, न होने से 'वाचक लुप्ता' है।

कुन्द इन्दु सम देह उमारमण करुणायतन।

यहाँ समानधर्म 'श्वेत' न होने से 'धर्मलुप्ता' है।

विधुवदनी मृग शावक लोचनि।

यहाँ समान धर्म 'सुन्दर' और सादृश्यवाचक 'समान' आदि न होने से 'वाचक धर्म लुप्ता' है।

इसी प्रकार अन्य भी उदाहरण समझना चाहिये।

२— रूपक

यदि उपमेय में उपमान का आरोप किया जाय—दोनों में कोइ भेद न रख कर उपमेय को उपमान ही बना दिया जाय—तो रूपक अलङ्कार होता है।

उदाहरण—

उदित उदयगिरि-मञ्च पर रघुवर-बाल-पतङ्ग।
विकसे संत-सरोज सब हरषे लोचन-भृङ्ग॥

यहाँ 'मंच', 'रघुवर', 'संत' और 'लोचन' उपमेय है, जिनमें

क्रम से, 'उदयगिरि', 'बाल-पतङ्ग (सूर्य)', 'सरोज' और 'भृङ्ग' इन उपमानों का आरोप किया गया है।

रूपक तीन प्रकार का होता है:—

परम्परित, साङ्ग और निरङ्ग।

(क) जहाँ एक रूपक दूसरे रूपक का हेतु हो, रूपकों की परम्परा हो, वहाँ 'परम्परित रूपक' होता है। जैसे,

बंदउँ गुरुपदकंज कृपासिन्धु नर रूप हरि।
महा मोह तम-पुञ्ज जासु वचन रवि-कर-निकर॥

यहाँ उत्तरार्ध में वचनों को 'रविकर निकर' इसीलिये बनाया गया कि मोह को 'तम पुञ्ज' कहा गया था। अन्यथा वचनों में और रविकरों (सूर्य किरणों) में कोई भी सादृश्य न था। 'मोह' का रूपक 'वचन' के रूपक का हेतु है।

परम्परित रूपक में कभी कभी श्लेष भी होता है। जैसे—

संकर-मानस-राजमराला।

यहाँ 'मानस' (मन) और 'मानस' (मानसरोवर) का रूपक रामचन्द्र और राजमराल के रूपक का हेतु है। 'मानस' के दो अर्थ होने से श्लेष भी है।

(ख) 'साङ्गरूपक' में उपमान का उपमेय आरोप में अङ्गों के सहित किया जाता है। ऊपर का उदाहरण, 'उदित उदयगिरि-मञ्च पर—' साङ्गरूपक है। प्रधान उपमान सूर्य और उसके

साथ साथ उदयगिरि, कमल और भृङ्ग इन अङ्गों का भी आरोप किया गया है। इसी प्रकार,

वर्षा ऋतु रघुपति भगति तुलसी सालि सुदास।
राम नाम वर बरन जुग सावन भादों मास॥

यहां भी वर्षा के सब अङ्गों का वर्णन होने से साङ्ग रूपक है।

इन दोनों उदाहरणों में समस्त अङ्गों का वर्णन है। कभी कभी कुछ ही अङ्गों का वर्णन किया जाता है। जैसे :—

नाम पहरुवा, दिवस निसि ध्यान तुम्हार कपाट।
लोचन निज पद जंत्रिका प्रान जाहिं केहि बाट॥

यहां नाम और पहरेदार, ध्यान और किवाड़, तथा लोचन और यन्त्र (ताला) में रूपक है, पर प्राण और बन्दी का रूपक नहीं कहा गया है। इसे 'एकदेशविवर्ति' कहते हैं।

(ग) 'निरङ्ग रूपक' में अङ्गों का रूपक नहीं होता, केवल उपमान का उपमेय में आरोप होता है। जैसे :—

श्री गुरुपद-नख-मनिगन जोती।
सुमिरत दिव्यदृष्टि हिय होती॥

यहाँ केवल उपमान 'मनि गन' का उपमेय 'पद नख' में आरोप है।

जहाँ उपमेय में उपमान से कुछ विशेषता दिखाते हुए दोनों का अभेद बताया जाय, उसे 'अधिक रूपक' कहते हैं। जैसे,

निष्कलङ्क विधु तेरा मुख है, नयन सदा विकसित राजीव।

यहाँ 'मुख' और 'विधु', तथा 'नयन' और 'राजीव' के रूपक में मुख और नयनों की विशेषता 'निष्कलङ्क' और 'सदा विकसित' विशेषणों से दिखाई गई है।

इसी प्रकार उपमेय में उपमान से कुछ न्यूनता दिखाने पर 'न्यून रूपक' भी होता है। जैसे,

बिना तीन नयनों के शिव हैं, बिना चार मुख ब्रह्मा आप।

एक उपमेय का अनेक उपमानों से अभेद बताने पर 'माला रूपक' होता है। जैसे,

छेम की छहर, गंगा रावरी लहर,
कलि काल को कहर, जमजाल को जहर है।

३—अनन्वय

एक ही वस्तु यदि उपमेय और उपमान दोनों हो, यदि उपमेय अपना उपमान स्वयं ही हो, तो 'अनन्वय' होता है। 'अनन्वय' का अर्थ है, जिसमें उपमेय का 'अन्वय' (सादृश्य) न मिले इसके द्वारा उपमेय के सदृश दूसरी वस्तु का अभाव दिखाया जाता है। उदाहरण—

आजु गरीब निवाज मही पर,
तो सो तुही सिवराज विराजे।

अथवा,

राम से राम, सिया सी सिया,
सिरमौर विरंचि विचारि सँवारे।
बस भारत के सम भारत है।

अर्थात् इन सब की बराबरी करने वाला संसार में अन्य कोई है ही नहीं, यह अनुपम है।

४—उपमेयोपमा

उपमेयोपमा में दो वाक्य होते हैं। पहले वाक्य के उपमान और उपमेय दूसरे वाक्य में बदल कर उपमेय और उपमान हो जाते हैं। इस प्रकार दो के अतिरिक्त तीसरी सदृश वस्तु का अभाव दिखाया जाता है। उदाहरण—

सोहैं सुरेश से राम नरेश, सुरेशहु राम नरेश सो राजै।
औधपुरी अमरावती सी, अमरावती औधपुरी सी विराजै ॥

पहले वाक्यों में 'राम' और 'औधपुरी' उपमेय हैं, 'सुरेश' और 'अमरावती' उपमान ; दूसरे वाक्यों में सुरेश और 'अमरावती' उपमेय हैं, 'राम' और 'औधपुरी' उपमान। इसे 'परस्परोपमा' भी कहते हैं।

५—अपह्नुति

उपमेय का निषेध करके—उसे छिपा कर उसमें यदि उपमान का आरोप किया जाय, (उसे उपमान ही बना दिया जाय), तो

'अपन्हुति' अलङ्कार होता है। 'अपन्हुति' का अर्थ है, छिपाना ; इसमें उपमेय को छिपाया जाता है। उदाहरण—

नील व्योम यह नहीं, किन्तु है विस्तृत सागर।
नहीं विमल नक्षत्र, फेनकण छाये उस पर॥

यहां उपमेय 'व्योम' और 'नक्षत्रों' का निषेध करके उनमें 'सागर' और 'फेनकण' इन उपमानों का आरोप किया गया है।

अथवा

पहिरे श्याम न पीतपट, घन में बीजु बिलास।

कुछ आलङ्कारिकों ने अपन्हुति के छः भेद किये हैं; शुद्ध, हेतु. पर्यस्त, भ्रान्त, छेक और कैतव।

(क) ऊपर के लक्षण और उदाहरण 'शुद्ध अपन्हुति' के हैं।

(ख) 'शुद्ध अपन्हुति' में ही यदि उपमेय के निषेध का हेतु भी बता दिया जाय तो 'हेत्वपन्हुति' हो जाती है। उदाहरण—

रात माँझ रवि होत नहि, ससि नहि तीव्र सु लाग।
उठी लखन अवलोकिये, बारिधि सों बड़वाग॥

यहाँ उपमेय 'चन्द्रमा' के निषेध में 'तीव्र होना' कारण बता कर उपमान 'वाडवाग्नि' का आरोप किया गया है।

(ग) 'पर्यस्त अपन्हुति' में उपमेय को छिपा कर उसके धर्म का उपमान में आरोप किया जाता है। उदाहरण—

है न सुधा यह, है सुधा संगति साधु समाज।

यहाँ उपमेय 'सुधा' का निषेध करके, उसके धर्म 'सुधात्व' को उपमान साधुसङ्गति में आरोपित किया गया है। 'शुद्ध अपन्हुति' में इस प्रकार धर्म का आरोप नहीं किया जाता।

(घ) 'भ्रान्त अपन्हुति' में शब्दों द्वारा सत्य बात बता कर उपमेय में उपमान की शङ्का से उत्पन्न भ्रम को दूर किया जाता है। उदाहरण—

कह प्रभु हँसि जनि हृदय डराहू। लूक न अशनि न केतु न राहू।
ये किरीट दशकन्धर केरे। आवत बालि तनय के प्रेरे॥

यहां रावण के मुकुटों को देख कर वानरों को भ्रम हुआ कि यह अग्नि, वज्र, केतु अथवा राहु है; प्रभु रामचन्द्र ने वास्तविक बात बता कर उनका भ्रम और डर दूर किया। 'किरीट' उपमेय और 'लूक', 'अशनि', 'केतु,' 'राहु' उपमान हैं।

(ङ) 'छेकापन्हुति' में उपमान की शंका द्वारा उपमेय का निषेध करके उसे छिपाया जाता है। यह एक तरह से 'भ्रान्तापन्हुति' की ठीक उलटी है। उसमें अवास्तविक का भ्रम दूर करके वास्तविक बात बताई जाती है, इसमें वास्तविक बात छिपाकर अवास्तविक को स्थापित किया जाता है। 'छेकापन्हुति' में प्रायः श्लेष का प्रयोग भी होता है। उदाहरण—

"तिमिर-बंस-हर अरुन-कर, आयो सजनी भोर।"
"सिव सरजा?" "चुप रहु, सखी, सूरज कुलसिर मौर॥"

तिमिर (अन्धकार या तैमूर लङ्ग) के वंश का नाश करने वाला, अरुण करों (लाल रंग की किरणों, या खून से लाल हाथों) वाला, सबेरे आया। "क्या शिवाजी ?" "नहीं, सूर्य।"

यहाँ उपमेय शिवाजी को उपमान सूर्य की शंका द्वारा छिपाया गया। 'तिमिर' और 'कर' में श्लेष है।

(च) 'कैतवापन्हुति' में 'कैतव', 'व्याज', 'कपट', 'छल', 'मिस' इत्यादि शब्दों के प्रयोग द्वारा उपमेय को छिपाया जाता है। उदाहरण—

रसना मिस विधि ने धरी सापनि खल मुख मांहि।

अथवा

रामचन्द्र कर मिस कामद कलप तरु।
चारौं फल बारहौ महीने बरसत हैं।

अथवा

गंग महिप महराज की, निसित असित असि व्याज।
हनत कुपित जमराज नित तिनके सत्रु समाज॥

६—उत्प्रेक्षा

उपमेय की उपमान रूप से सम्भावना करना 'उत्प्रेक्षा' कहलाता है। 'सम्भावना' उस संशय को कहते हैं जिसकी एक कोटि, या पक्ष, प्रबल हो। नदी-तट पर पड़ी हुई सीप को दूर से

देख कर किसी को संशय हो सकता है कि यह सीप है या चाँदी का टुकड़ा। इस संशय की दोनों कोटियाँ (१-सीप है, २-चाँदी है) बराबर बल की हैं। 'सम्भावना' में एक कोटि अधिक बल की होती है, जैसे, उसी सीप को देख कर कहे कि यह सीप मानों चाँदी, का टुकड़ा है। यहाँ कहने वाला स्पष्ट ही उसे चाँदी बताता है, इसलिये यह कोटि प्रबल है पर यह ध्यान में रखना आवश्यक है कि एक कोटि प्रबल होने पर भी यहाँ निश्चय नहीं है। सीप को देख कर चाँदी का निश्चय हो जाने पर 'भ्रान्ति' मानी जायगी 'सम्भावना' नहीं। 'उत्प्रेक्षा' में यह सम्भावना कवि की प्रतिभा से उत्पन्न होनी चाहिये। इसके वाचक शब्द 'मनु', 'जनु', 'मानों' 'जानों' 'निश्चय' इत्यादि हैं, पर कभी कभी इन शब्दों के प्रयोग के बिना भी उत्प्रेक्षा होती है, इनमें से किसी शब्द का प्रयोग होने पर उत्प्रेक्षा को 'वाच्य', और न होने पर 'गम्य' अथवा 'प्रतीयमान' कहते हैं।

उत्प्रेक्षा के तीन भेद हैं, 'वस्तूत्प्रेक्षा, 'हेतूत्प्रेक्षा' और 'फलोत्प्रेक्षा'। उदाहरण—

(क) लसत मंजु मुनिमण्डली मध्य सीय रघुचंद।
ज्ञानसभा जनु तनु धरे भक्ति सच्चिदानंद॥

यहाँ 'मुनिमण्डली' 'सीय' और 'रघुचंद' की क्रम के 'ज्ञान सभा', भक्ति और 'सच्चिदानंद' रूप से सम्भावना की गई है। यह 'वस्तूत्प्रेक्षा' है।

(ख) तुव चख निरखि लजाय मनु किय वनवास मृगीन।
कुवलय रहत मलीन दिन रहे पैठि जल मीन॥

यहाँ मृगियों के वनवास आदि का हेतु 'तुम्हारी आँखों को देख कर लज्जित होना' सम्भावित किया गया है। यह 'हेतूत्प्रेक्षा' है। वास्तव में हेतु न होने पर भी हेतु मान लिया गया है।

(ग) मानहुँ इहिं अभिलाष लौं चिनगी चुगत चकोर।
राधा मुख ससि चख बन्यो रहौं लहौं चितचोर॥

यहाँ चकोर के अग्नि चुगने का फल 'राधा के मुख शशि में नत्र बन कर चितचोर (चन्द्रमा) का संयोग' बताया गया है। वास्तव में चकोर का अग्नि चुगना स्वाभाविक ही है।

रमनी-मुख-मंडल निरखि राका रमन लजाइ।
जलद, जलधि, सिव, सूर मैं राखत बदन छिपाइ।

[नायिका का मुख देख कर चन्द्रमा मानों लज्जित हो जाता है और बादलों में, समुद्र में, शिवजी के सिर पर अथवा सूर्य में (अमावस्या के दिन) अपना मुँह छिपाता फिरता है।] यहाँ 'मनहुँ' आदि शब्दों का प्रयोग न होने के कारण 'गम्योत्प्रेक्षा' है।

७—अतिशयोक्ति

अतिशयोक्ति पाँच प्रकार से हो सकती है।

(क) 'रूपकातिशयोक्ति', में उपमान ही के द्वारा उपमेय का ज्ञान होता है, और उपमेय उपमान में विलीन हो जाता है। इस प्रकार

वास्तव में भेद होने पर भी उपमान और उपमेय में अभेद कथन किया जाता है। उदाहरण—

भूषन भनत देस देस बैरि नारिन में,
होत अचरज घर घर दुख दंद के ॥
कनकलतानि इन्दु इन्दु माँहि अरबिंद,
झरैं अरबिन्दन ते बुन्द मकरन्द के ॥

यहाँ 'कनकलता', 'इन्दु', अरबिन्द' और 'मकरन्द बुन्द' क्रम से 'स्त्रियाँ', 'मुख', 'नेत्र' और 'आँसू' इनके उपमान हैं। केवल उपमान ही कहे गये हैं, उन्हीं के द्वारा उपमेयों का ज्ञान होता है। भेद होने पर भी 'इन्दु' और 'मुख' को बिल्कुल एक ही वस्तु—अभिन्न—बताया गया है।

(ख) 'भेदकातिशयोक्ति', में वास्तव में भेद न होने पर भी भेद बताया जाता है। इसमें प्रायः 'अन्य', 'और', 'दूसरा ही' 'अनोखा', 'अलौकिक' इत्यादि शब्दों का प्रयोग होता है।

उदाहरण—

अनियारे दीरघ नयन किती न तरुनि समान।
वह चितवनि औरे कछू जिहि बस होत सुजान ॥

यहाँ वास्तव में 'वह चितवनि' में औरों से भेद न होने पर भी भेद बताया गया है।

(ग) 'सम्बन्धातिशयोक्ति' में वास्तविक सम्बन्ध न होने पर भी सम्बन्ध बताया जाता है। उदाहरण—

पावस घन अँधियार मँह रह्यो भेद नहि आन।
राति दिवस जान्यो परै लखि चकई चकवान॥

बादलों के कारण अँधेरा होने पर रात-दिन का भेद बिलकुल नष्ट हो गया है। केवल चकई-चकवा के साथ साथ देखने से दिन का और अलग अलग देखने से रात का अनुमान लगाया जाता है।

यहाँ वास्तव में वर्षा ऋतु के साथ इतने अँधेरे का सम्बन्ध न होने पर भी वर्णन-चमत्कार के लिये सम्बन्ध कहा गया है।

(घ) 'असम्बन्धातिशयोक्ति' में सम्बन्ध होने पर भी असम्बन्ध का कथन होता है। उदाहरण—

जो सुख भा सिय मातु मन देखि राम वर भेस।
सो न सकहिं कहि कलप सत सहस सारदा सेस॥

यहाँ सुख का वर्णन करने में हज़ार शारदा और शेष की शक्ति का सम्बन्ध होने पर भी असम्बन्ध बताया गया है।

इसी प्रकार,

पति-देवता सुतीय मँह मातु प्रथम तव रेख।
महिमा अमित न कहि सकहिं सहस सारदा सेख॥

(ङ) वास्तव में कारण के बाद ही कार्य होता है, पर वर्णन चमत्कार के लिये यदि कारण के साथ ही कार्य का होना कहा जाय तो 'अक्रमातिशयोक्ति', और कारण से भी पहिले कार्य का होना कहा जाय तो 'अत्यन्तातिशयोक्ति' होती है। कारण की

कवल चर्चा होने पर यदि कार्य का होना कहा जाय तो 'चपलातिशयोक्ति' होती है। इन तीनों भेदों में कारण और कार्य के क्रम का विपर्यय होने से इन्हें 'विपर्ययातिशयोक्ति' कहा जा सकता है।

क्रमशः उदाहरण—

तब सिव तीसर नयन उघारा।
चितवत काम भयउ जरि छारा॥

तीसरे नेत्र से देखना कारण है, कामदेव का भस्म हो जाना कार्य पर यहाँ दोनों का साथ होना बताया गया है।

कवि तरूवर, सिव-सुजस रस, सींचे अचरज मूल।
सुफल होत है प्रथम ही, पीछे प्रकटत फूल॥

कविरूपी वृक्षों को शिवाजी के यश जल से सींचने पर एक आश्चर्य की बात होती है, फल (इनाम) पहले मिल जाता है, फूल (प्रसन्नता) बाद में दिखाई देता है। कारण से पहले ही कार्य हो जाता है।

आयो आयो सुनत ही सिव सरजा तुव नाँव।
बैरि नारि दृग जलन ते बूड़ि जात अरि गाँव॥

कारण (शिवाजी के आने) की चर्चा होते ही कार्य (शत्रु की स्त्रियों का रोना) हो जाता है।

इन तीनों भेदों में कार्य के अत्यन्त शीघ्र हो जाने का वर्णन ही उद्देश्य है।

८—व्यतिरेक

उपमान की अपेक्षा उपमेय में किसी विशेषता का वर्णन करने पर 'व्यतिरेक' होता है। यह दो प्रकार से हो सकता है, उपमेय में कोई अधिक गुण दिखा कर अथवा उपमान में कोई दोषादि दिखा कर।

सज्जन-हृदय पयोधि सम अति विशाल, गम्भीर।
किन्तु एक में मधुर रस, विरस अन्य का नीर॥

यहाँ उपमेय 'सज्जन-हृदय' और उपमान 'पयोधि' में विशालता तथा गम्भीरता का सादृश्य है, किन्तु सज्जन-हृदय में मधुर विशेष गुण है और 'पयोधि' में खारीपन का दोष है।

इसी प्रकार—

जनम सिंधु पुनि बंधु विष दिन मलीन सकलंक।
सियमुख समता पाव किमि चंद बापुरो रंक॥

यहां भी चन्द्रमा के अनेक दोष दिखा कर उसे सीता जी के मुख की अपेक्षा हीन बताया गया है।

९—(अर्थ-) श्लेष

स्वभाव से एक अर्थ वाले शब्दों के अनेक अर्थ या तात्पर्य होने पर 'अर्थ-श्लेष' होता है। 'शब्द-श्लेष' में आये हुए शब्द स्वाभाव से एक अर्थ वाले नहीं होते, उनके दो या अधिक अर्थ पहले ही से

होते हैं। 'अर्थश्लेष' में एक शब्द के अनेक अर्थ प्रसंग के अनुसार हो जाते हैं। 'शब्दश्लेष' में शब्द परिवर्तन नहीं किया जा सकता है। 'अर्थश्लेष' में किया जा सकता है, यह पहले ही कह चुके हैं।

सतसैया के दोहरे ज्यों नावक के तीर।
देखत के छोटे लगैं, घाव करैं गम्भीर॥

यहां उत्तरार्ध में अर्थश्लेष है। सब शब्द स्वभाव से एक अर्थ वाले हैं, और प्रसङ्ग के अनुसार 'दोहा' और 'तीर' दोनों में उपयुक्त होते हैं। इन शब्दों को बदल कर समानार्थक शब्द भी रखे जा सकते हैं।

१०—अर्थान्तरन्यास

एक कथन से दूसरे कथन का समर्थन करना 'अर्थान्तरन्यास' कहाता है। यह समर्थन दो तरह से हो सकता है, विशेष से सामान्य का और सामान्य से विशेष का। उदाहरण:—

रहिमन याचकता गहे बड़े छोट ह्वै जात।
नारायण हू को भयो बावन अङ्गुर गात॥

यहां पहले, "बड़े लोग भी याचकता करने से छोटे बन जाते हैं।" यह एक सामान्य बात कह कर उसे "नारायण भी माँगने से बावन अंगुल के हो गये" इस विशेष उदाहरण से समर्थित किया गया है।

तरुवर फल नहिं खात हैं, सरवर पियहि न पान।
कहि रहीम परकाज हित संपति सचहिं सुजान॥

यहाँ पहले, "वृक्ष अपने फल आपही नहीं खाते, और तालाब अपना जल आप नहीं पीते" यह विशेप बात कही, फिर एक सामान्य उक्ति से इसका समर्थन किया, "सत्पुरुष दूसरों ही के लिये धन का संचय करते हैं।"

११—विभावना

यदि प्रसिद्ध कारण के बिना ही कार्य की उत्पत्ति का वर्णन किया जाय तो 'विभावना' अलंकार होता है। उदाहरण:—

(क) बिनु पद चलै सुनै बिनु काना।
कर बिनु कर्म करै विधि नाना॥
आनन रहित सकल रस भोगी।
बिनु बानी बकता बड़ जोगी॥

इसके अतिरिक्त विभावना के अन्य भी पांच भेद किये गये हैं।

(ख) अपूर्ण कारण से कार्य की उत्पत्ति :—
काम कुसुम धनु सायक लीन्हें।
सकल भुवन अपने बस कीन्हें॥

कामदेव ने केवल फूलों के बने हुए, ऐसे धनुष बाणों से संसार को वश में कर लिया, जो न कठोर थे न तीक्ष्ण।

संसार को वश में करने का कार्य कठोर और तीक्ष्ण शस्त्रों द्वारा होना चाहिये।

(ग) विघ्न होने पर भी कार्य की उत्पत्तिः—

निसदिन स्रुतिसंगत तऊ, नयन राग की खानि।

जो श्रुति (वेद, शास्त्र) को जानता है, उसे राग-द्वेष से दूर रहना चाहिये। पर आँखें श्रुति (कानों) के पास रहती हैं, तब भी राग (प्रेम, रक्तिमा) को खान हैं। 'श्रुति' और 'राग' शब्दों में श्लेष भी है।

(घ) जो वास्तव में कारण नहीं है, उससे कार्य की उत्पत्तिः—

कोकिल की बानी अबै बोलत सुन्यो कपोत।

कपोत—किसी व्यक्ति का कबूतर का सा सुन्दर कण्ठ-कोयल की वाणी बोलता है। कोयल की वाणी का कारण, कोयल ही है, कपोत नहीं। यहां कपोत में 'रूपकातिशयोक्ति' भी है।

(ङ) विरुद्ध कारण से कार्य की उत्पत्तिः—

शशि की शीतल भी किरणें,
देतीं दुखियों को ताप।

(च) कार्य से कारण की उत्पत्ति :—

हुई आपके कर-कल्पद्रुम से यश की सरिता उत्पन्न।

नदी के जल से वृक्ष उत्पन्न होता है, यहां दानी के हाथ रूपी कल्प वृक्ष से कीर्ति नदी निकली है। कार्य से कारण की उत्पत्ति है।

१२-विशेषोक्ति

विभावना की ठीक विपरीत विशेषोक्ति है। कारण होने पर भी कार्य न हो तो 'विशेषोक्ति' होती है। उदाहरण :—

अलि, इन लोयन को कछू उपजी बड़ी बलाय।
नित प्रति नीर भरे रहें, तऊ न प्यास बुझाय॥

'लोयन' (आँखों) में प्यास बुझने का कारण, नीर (आँसू) सदा वर्तमान रहता है, फिर भी प्यास (दर्शन की इच्छा) दूर नहीं होती, कार्य उत्पत्ति नहीं होती।

इसी प्रकार :—

दौलति इन्द्र समान बढ़ी, पै खुमान को नेकु गुमान न आयो।

१३—विरोधाभास

यदि किन्हीं दो बातों में प्रकट में परस्पर विरोध मालूम पड़े पर वास्तव में न हो, तो 'विरोधाभास' होता है। उदाहरण:—

मूक होहिं वाचाल, पङ्गु चढ़ै गिरिवर गहन।
जासु कृपा सो दयाल, द्रवहु सकल कलिमल दहन॥

यहाँ मूक का वाचाल होना और पङ्गु का पर्वत पर चढ़ना परस्पर विरुद्ध बातें हैं, पर ईश्वर की कृपा से यह भी सम्भव होने से वास्तव में कोई विरोध नहीं है।

१४-स्वाभावोक्ति

किसी के स्वाभाविक रूप, गुण, चेष्टा आदि का चमत्कार-पूर्ण वर्णन 'स्वाभावोक्ति' कहाता है।

यह अलङ्कार प्रायः बालकों और पशु-पक्षियों के वर्णन में उपयुक्त होता है और इसमें हृदय-ग्राही चमत्कार का होना अत्यन्त आवश्यक है। उदाहरण—

सोभित कर नवनीत लिये।

घुटुरुवन चलत, रेनु तन मण्डित, मुख में लेप किये।

बाल-कृष्ण का वर्णन है।

द्वितीय भाग

पिंगल-कौमुदी

गुरु और लघु

छन्दों की सब व्यवस्था गुरु और लघु अक्षरों तथा उनकी संख्या पर आश्रित है। गुरु, लघु अक्षरों को भिन्न भिन्न क्रम से रखने पर भिन्न भिन्न छंद बनते हैं।

ह्रस्व अक्षर को 'लघु' कहते हैं, जैसे, अ, इ, उ, क, च इत्यादि। इसका चिह्न । है।

दीर्घ अक्षर, संयुक्त से पहले का अक्षर, और अनुस्वारयुक्त अक्षर 'गुरु' कहाता है। जैसे:—

जड़, चेतन, गुन, दोस मय बिस्व कीन्ह करतार।
संत हंस गुन गहहिं पय परिहरि बारि बिकार॥

यहाँ 'चे–', 'दो–', 'की–' '–ता–', 'बा–' और '–का–' दीर्घ

होने से; 'बि–' संयुक्त '–स्व' के पहले आने से; तथा 'सं–' और 'हं–' अनुस्वारयुक्त होने से गुरु हैं शेष सब लघु हैं।

अनुस्वार और अनुनासिक का भेद ध्यान में रखना आवश्यक है। अनुनासिक अक्षर गुरु नहीं माना जाता, जैसे ऊपर के दोहे में '–हिं' गुरु नहीं है।

संयुक्त से पहले दीर्घ अक्षर में कोई परिवर्तन नहीं होता।

संयुक्त से पहले के ह्रस्व अक्षर को गुरु मानने का नियम प्राय: एक शब्द के भीतर ही प्रयुक्त होता है, जैसे ऊपर 'बिस्व' 'बि–' पर,

जपहिं राम धरि ध्यान उर, सुन्दर स्याम सरीर।

यहाँ 'ध्या–' और 'स्या–' संयुक्तों के पहले आने पर भी '–रि' और '–र' गुरु नहीं हैं।

एक शब्द के भीतर भी संयुक्त के पहले के ह्रस्व अक्षर पर यदि ज़ोर नहीं पड़ता तो वह गुरु नहीं माना जाता, जैसे :—

नहिं संतन्ह कर साथ

यहाँ '–न्ह' से पहले 'त–' गुरु नहीं है।

कभी कभी छन्द के चरण के अन्त में आने वाला लघु भी गुरु मान लिया जाता है। जैसे:—

माया किसे, मन किसे, किसको शरीर,
आत्मा किसे, कह रहे सब धर्मधीर।

यहाँ 'शरीर' और 'धीर' में '–र' गुरु है और उसका उच्चारण '–रा' के समान होता है।

दीर्घ अक्षर का कभी कभी लघु की तरह उच्चारण किया जाता है, जैसे :—

तेहि कर बिमल बिबेक विलोचन।

यहाँ 'ते–' का उच्चारण लघु 'ति–' की तरह होता है। पर प्राय: खड़ी बोली के पद्यों में ऐसा नहीं होता।

गुरु का चिह्न ऽ है।

मात्रा

अक्षर के उच्चारण करने में जो समय लगता है, उसे मात्रा, कहते हैं। लघु अक्षर की एक मात्रा, दीर्घ की दो मात्रायें और स्वर-हीन व्यञ्जन की आधी मात्रा मानी जाती है। छंद-शास्त्र में आधी मात्रा का कोई उपयोग नहीं होता, पर जैसा ऊपर बताया जा चुका है, स्वरहीन व्यञ्जन (संयुक्त के प्रथम भाग) से पहले का ह्रस्व अक्षर गुरु हो जाने से दो मात्राओं का माना जाता है। संयुक्त से पहले गुरु अक्षर की दो ही मात्रायें रहती हैं।

वास्तव में गुरु और लघु तथा मात्रा केवल स्वरों पर आश्रित रहते हैं। स्वरों के साथ मिले हुए व्यञ्जन स्वरों के अनुसार ही गुरु या लघु माने जाते हैं।

गण

छन्दों के लक्षण बनाने की सुविधा के लिये तीन तीन अक्षरों के आठ समूह बना लिये गये हैं जिन्हें 'गण' कहते हैं।

१—'मगण' में तीनों गुरु अक्षर होते हैं ऽ ऽ ऽ

२—'यगण' में पहला लघु दूसरा तीसरा गुरु । ऽ ऽ

३—'रगण' में पहला और तीसरा गुरु दूसरा लघु ऽ । ऽ

४—'तगण' में पहला और दूसरा गुरु, तीसरा लघु ऽ ऽ ।

५—'भगण' में पहला गुरु, दूसरा तीसरा लघु ऽ । ।

६—'जगण' में पहला और तीसरा लघु दूसरा गुरु । ऽ ।

७—'सगण' में पहला दूसरा लघु, तीसरा गुरु । । ऽ

८—'नगण' में तीनों लघु । । ।

इनके अतिरिक्त एक लघु अक्षर (।) को 'ल' और एक गुरु (ऽ) को 'ग' कहा जाता है।

इन्हें सरलता से याद रखने के लिये यह दोहा उपयुक्त होगा—

भ, ज, स आदि, मधि, अन्त गुरु,
य, र, त लघुहिं पहचान।
मगण सर्वगुरु, न सबलघु,
ग गुरु, ल लघु पुनि जान॥

अर्थात् भगण, जगण, सगण क्रम से आदि, मध्य, अन्त में गुरु (शेष लघु); यगण, रगण, तगण क्रम से आदि, मध्य, अन्त

में लघु शेष गुरु; मगण तीनों गुरु; नगण तीनों लघु; ग एक गुरु; और ल एक लघु होते हैं।

यति

साधारणतया प्रत्येक छन्द के चार टुकड़े होते हैं, जो 'चरण' कहाते हैं। छन्द पढ़ने के समय प्रत्येक चरण के बाद कुछ देर रुक कर तक दूसरा चरण पढ़ा जाता है। पर किसी किसी छन्द में एक चरण के भीतर ही एक बार या दो बार रुकना पड़ता है। इसे 'यति' अथवा 'विराम' कहते हैं। यति पर चरण की अपेक्षा कुछ कम देर रुका जाता है। उदाहरण:—

प्रियपति वह मेरा। प्राणप्यारा कहाँ है,
दुख जलनिधि डूबी। का सहारा कहाँ है।
लख मुख जिसका मैं। आज लौं जी सकी हूँ,
वह हृदय हमारा। नैनतारा कहाँ है॥

इस छन्द में प्रत्येक चरण में आठवें अक्षर के बाद 'यति' है। इसे पढ़ने में 'मेरा', 'डूबी', मैं, और 'हमारा' के बाद कुछ देर रुकना चाहिये। और प्रत्येक चरण के अन्त में अधिक देर तक।

छंदों के भेद

छंदों के दो मुख्य भेद हैं, वर्णिक और मात्रिक।

वर्णिक छंदों में वर्णों (अक्षरों) की एक नियत संख्या रहती

है, और उन वर्णों में कितने गुरु, कितने लघु होंगे, तथा वे किस क्रम से होंगे, यह भी नियत रहता है। वर्णों की संख्या और क्रम पर आश्रित रहने से इस प्रकार के छंद वर्णिक कहाते हैं।

उदाहरण:—

। । । ऽ । । ऽ । । ऽ । ऽ
दिवस का अवसान समीप था

। । । ऽ । । ऽ । । ऽ । ऽ
गगन था कुछ लोहित हो चला।

। । । ऽ । । ऽ । । ऽ । ऽ
तरु शिखा पर थी अब राजती

। । । ऽ । । ऽ । । ऽ । ।
कमलिनी कुल वल्लभ की प्रभा॥

यह 'द्रुतविलम्बित' नाम का एक वर्णिक छंद है। इसके प्रत्येक चरण में अक्षरों की संख्या १२ होती है, और गुरु लघु का क्रम होता है ।।। ऽ।। ऽ।। ऽऽ (नगण, भगण, भगण, रगण)। यही संख्या और यही क्रम द्रुतविलम्बित छंद के प्रत्येक चरण में नियत रहेंगे, उनमें कोई परिवर्तन नहीं हो सकता।

इसके विपरीत 'मात्रिक छंदों' में केवल मात्राओं की संख्या नियत रहती है। न वर्णों की संख्या नियत रहती है, न गुरु, लघु का क्रम। नियत मात्रायें चाहे जितने अक्षर में पूरी हों और वे गुरु लघु अक्षर चाहे जिस क्रम से आये हों

मात्रिक छंद में कोई दोष नहीं आता। मात्राओं की संख्या पर आश्रित रहने से यह छंद मात्रिक कहलाते हैं।

उदाहरण :—

।।।। ।।। ऽ। ।। ऽऽ
परहित सरिस धर्म नहिं भाई

।। ऽऽ ।। ।। ।।ऽऽ
पर पीड़ा सम नहि अधमाई।

।।। ।।। ।।ऽ ।। ।। ऽ
सुमति कुमति सबके उर बस हीं

ऽ। ।ऽ। ।।। ।। ।।ऽ
नाथ पुरान निगम अस कहहीं ॥

यह मात्रिक छंद 'चोपाई' है। 'लक्षण' के अनुसार प्रत्येक चरण में १६ मात्रायें हैं। पर अक्षरों की संख्या नियत नहीं है। पहले चरण में १३, दूसरे में १२, तीसरे में १४ और चौथे में १३ अक्षर हैं। इसी प्रकार गुरु, लघु का भी कोई नियत क्रम नहीं है।

इन दो मुख्य भेदों के तीन तीन भेद और हैं, सम, अर्धसम और विषम।

'सम' में चारों चरण समान होते हैं। ऊपर के द्रुतविलम्बित और चौपाई वर्णिक तथा मात्रिक 'सम' हैं। 'अर्धसम' में पहला और तीसरा तथा दूसरा और चौथा चरण समान होता है।

उदाहरण :—

S I I S I S I I I
नाम-भरोस, नाम-बल, १२ मात्रायें।

S I I S I
नाम-सनेह। ७ मात्रायें।

I I I I I I I I S I I
जनम जनम रघुनन्दन १२ मात्रायें।

I I I I S I
तुलसिहिं देहु ॥ ७ मात्रायें।

यह मात्रिक 'अर्धसम' है। वर्णिक अर्धसम हिन्दी में प्रयुक्त नहीं होते।

'विषम' में चारों चरण असमान होते हैं। इस प्रकार के वर्णिक अथवा मात्रिक विषम छंद भी हिन्दी में प्रयुक्त नहीं होते।

इसके अतिरिक्त चार से कम या अधिक चरण वाले छंद भी 'विषम' के अन्तर्गत हैं। जैसे छः चरणों के छप्पय और कुंडलिया छंद। जिन वर्णिक सम छन्दों के प्रत्येक चरण में २६ या अधिक अक्षर हों, वे 'दण्डक' कहाते हैं। इसी प्रकार जिन मात्रिक सम छंदों के प्रत्येक चरण में ३२ या अधिक मात्रायें हों, वे भी 'दण्डक' कहे जाते हैं।

वर्णिक छंदों को प्रायः 'छंद' न कह कर 'वृत्त' कहा जाता है।

सम वर्णिक वृत्त

प्रत्येक सम वर्णिक वृत के चार चरण होते हैं और वे चारों समान होते हैं। इसलिये केवल एक चरण का लक्षण बताने से पूरे वृत्त का लक्षण हो जाता है।

समवृत्तों के चरण एक अक्षर से लेकर ३३ अक्षरों तक के होते हैं। गुरु, लघु के क्रम के अनुसार इनमें से प्रत्येक के कई भेद हैं। यहाँ केवल मुख्य भेदों का वर्णन किया जायगा।

इन्द्रवज्रा (त, त, ज, ग, ग)

सूत्र—ताता जगो गावहु इन्द्रवज्रा।

१—'इन्द्रवज्रा' में प्रत्येक चरण में ११ अक्षर तथा क्रम से तगण, तगण, जगण और दो गुरु होते हैं। यति चरण के अन्त में ही होती है।

भागीरथी रूप अनूप कारी, चन्द्राननी लोचन कंज धारी।
वाणी बखानी सुख तत्व सोध्यो, रामानुजै आनि प्रबोध बोध्यो।

उपेन्द्रवज्रा (ज, त, ज, ग, ग)

सूत्र—जती जगौ गाय उपेन्द्रवज्रा।

२—'उपेन्द्रवज्रा' में भी ११ अक्षर तथा क्रम से जगण, तगण, जगण, दो गुरु होते हैं। यति चरण के अन्त में।

अनेक ब्रह्मादि न अंत पायो, अनेकधा वेदन गीत गायो।
तिन्हें न रामानुज बंधु जानौ, सुनौ सुधी केवल ब्रह्म मानौ॥

उपजाति (उपेन्द्रवज्रा + इन्द्रवज्रा)

सू०—उपेन्द्रवज्रा अरु इन्द्रवज्रा, दोऊ जहां हैं उपजाति जानो।

३—उपेन्द्रवज्रा और इन्द्रवज्रा दोनों से मिल कर 'उपजाति' छन्द बनता है।

कुटुम्बमाला अति घोर जाला, न राख मोहा मद को अटाला।
फन्दा परो तो हिय है विशाला, यातें सदा ही भज ले गुपाला॥

पहले दो चरण 'उपेन्द्रवज्रा' के और अन्तिम दो 'इन्द्रवज्रा' के हैं। इसके अन्य भी बहुत से भेद होते हैं।

दोधक (भ, भ, भ, ग, ग)

सू०—भाभि भगी गहि दोधक नीको।

४—'दोधक' में ११ अक्षर, क्रम से भगण, भगण, भगण, दो गुरु होते हैं, यति पाद के अन्त में।

सुंदर श्यामल राम सुजानो,
गौर सु लक्ष्मण नाम बखानो।
आशिष देहु इन्हें सब कोऊ,
सूरज के कुल मंडन दोऊ॥

स्वागता (र, न, भ, ग, ग)

सू०—स्वागतार्थ उठ रे नभ गंगा।

५—'स्वागता' में ११ अक्षर, क्रम से रगण, नगण, भगण, दो गुरु होते हैं, यति पादान्त में।

राज पुत्रिकनि स्यों छवि छाये
राजराज सब डेरहि आये।
हीर चीर गज बाजि लुटाये
सुंदरीन बहु मंगल गाये ॥

भुजङ्गप्रयात (य, य, य, य)

सू०—यचौ युक्त ताता भुजंगप्प्रयाता।

६—'भुजङ्गप्रयात' में १२ अक्षर, चार यगण होते हैं।

लगी स्यंदनै बाजिराजी विराजै।
जिन्हें देखि कै पौन को बेग लाजै ॥
भले स्वर्ण के किंकिनी यूथ बाजै।
मिले दामिनी सों मनो मेघ गाजै ॥

तोटक (स, स, स, स)

सू०—ससि सो सु अलंकृत तोटक है।

७—'तोटक' में १२ अक्षर चार सगण होते हैं, यति पादान्त में।

यहि बात सुनो भृगुनाथ जबै, कहि रामहिं लै घर जाहु अबै।
इनपै जग जीवत जो बचि हौं, रण हौं तुमसं फिरि कै रचि हौं ॥

मोतीदाम (ज, ज, ज, ज)

८—'मोतीदाम' में प्रत्येक चरण में चार जगण, होते हैं, यति पादान्त में।

भजो मन कृष्ण गुविन्द गुपाल, कृपाल रसाल सु दीनदयाल।
मनोहर मोहन सोहन श्याम, सदा शरणागत पूरणकाम॥

वंशस्थ (ज, त, ज, र)

सू०—सुजान वंशस्थविलं जता जरा।

६—'वंशस्थ' (अथवा 'वंशस्थविल') में १२ अक्षर, क्रम से जगण, तगण, जगण, रगण होते हैं, यति पादान्त में।

कभी खिले फूल गिरा प्रवाह में,
कलिंदजा को करता सपुष्प था।
गिरे फलों से फल शोभिनी उसे
कभी बनाता तरु का समूह था॥

द्रुतविलम्बित (न, भ, भ, र)

सू०—नभ भरी विधु भासन सुन्दरी।

१०—'द्रुतविलम्बित' (अथवा 'सुन्दरी') में १२ अक्षर, क्रम से नगण, भगण, भगण, रगण, होते हैं, यति पादान्त में।

दिवस का अवसान समीप था
गगन था कुछ लोहित हो चला।
तरुशिखा पर थी अब राजती
कमलिनी-कुल-वल्लभ की प्रभा॥

मालती (न, ज, ज, र)

सू०—निज जर बन्धन जान मालती।

११—'मालती' में १२ अक्षर, क्रम से नगण, जगण, जगण, रगण (न,ज,ज,र) होते हैं, यति सातवें अक्षर पर और पादान्त में।

विपिन विराध बलिष्ठ देखियो
नृप तनया भयभीत लेखियो।
तब रघुनाथ बाण कै हयो
निज निरवाण पंथ को ठयो॥

प्रहर्षिणी (म, न, ज, र, ग)

सू०—मानो जू, रंग महलों प्रहर्षिणी है।

१२—'प्रहर्षिणी' में १३ अक्षर, क्रम से मगण, नगण, जगण, रगण, एक गुरु होते हैं, यति तीसरे अक्षर पर और पादान्त में।

मानोजू। रंग रहि प्रेम में तुम्हारे
प्राणों के। तुमहिं अधार हो हमारे।
वैसो ही। विरचहु रास रे कन्हाई
भावै जो। शरद प्रहर्षिणी जुन्हाई॥

वसंततिलका (त, भ, ज, ज, ग, ग)

सू०—जानौ वसंततिलका तु भजौ जगौ गा।

१३—'वसंततिलका' में १४ अक्षर, क्रम से तगण, भगण, जगण, जगण, दो गुरु होते हैं यति आठवें अक्षर पर और पादान्त में; कुछ आचार्यों के मत से केवल पादान्त में।

बैठारि आसन सबै अभिलाष पूजे
सीता समेत रघुनाथ सबंधु पूजे।

जाके निमित्त हम यज्ञ यजो सु पायो
ब्रह्मांड मंडन स्वरूप जु बेद गायौ ॥

'उद्धर्पिणी', 'सिंहोद्धता' इसके अन्य नाम हैं।

चामर (र, ज, र, ज, र)

सू०—रोज रोज राधिका सु चामरै डुलावहीं।

१४—'चामर' में १५ अक्षर क्रम से रगण, जगण, रगण जगण, रगण होते हैं, यति पादान्त में।

देखि देखि कै अशोक राजपुत्रिका कह्यौ
देहि मोहि आगि तैं जु अंग आगि ह्वै रह्यौ।
ठौर पाइ पौनपूत डारि मुद्रिका दई
आस पास देखि कै उठाय हाथ कै लई ॥

मालिन—(न, न, म, य, य)

सू०—न न मि य य ह काहे, मालिनी मूर्तिधन्या।

१५—'मालिनी' में १५ अक्षर, क्रम से नगण, नगण मगण, यगण, यगण (न, न, म, य, य) होते हैं, यति आठवें अक्षर पर और पादान्त में।

मुख पर जिसके है। सौम्यता खेलती सी,
अनुपम जिसका हूँ। शील सौजन्य पाती।
पर दुख लख के है। जो समुद्विग्न होता,
वह सरलपने का। स्वच्छ सोता कहाँ है ॥

मन्दाक्रान्ता (म, भ, न, त, त, ग, ग)

सू०—मन्दाक्रान्ता कर सुमति को, मा मनौ तात गा गा।

१६—'मंदाक्रान्ता' में १७ अक्षर, क्रम से मगण, भगण, नगण, तगण, तगण, दो गुरु (म, भ, न, त, त, ग, ग) होते हैं, यति चौथे और दसवें अक्षर पर तथा पादान्त में।

तारे डूबे। तम टल गया, छा गई व्योम लाली,
पंछी बोले। तमचुर जगे, ज्योति फैली दिशा में।
शाखा डोली। सकलतरु की, कंज फूले सरों में,
धीरे धीरे। दिनकर कढ़े, तामसी रातबीती॥

शिखरणी (य, म, न, स, भ, ल, ग)

सू०—यमीना सो भूला, गुण गणनि गा गा शिखरिणी।

१७—'शिखरिणी' में १७ अक्षर, क्रम से यगण, मगण नगण, सगण, भगण, एक लघु, एक गुरु होते हैं। यति छठे अक्षर पर और पादान्त में।

हुई शोभा शाली। प्रकट हरियाली क्षिति पर,
निराली शोभा है। गिरिवर वनों की सुख कर।
दिखाती वर्षा में। प्रकृति नित जो दृश्य अपने,
नहीं होते वैसे। अपर ऋतु में प्राप्त सपने॥

पहले दो चरणों में अन्तिम अक्षर, 'र' को गुरु 'रा' की तरह पढ़ना चाहिये।

शार्दूलविक्रीड़ित (म, स, ज, स, त, त, ग)

सू०—मैसाजौ सततै गुरू सुमिरिकै, शार्दूलविक्रीड़ितै ।

१८—'शार्दूलविक्रीडित' में १९ अक्षर, क्रम से मगण, सगण, जगण, सगण, तगण, तगण और एक गुरु (म, स, ज, स, त, त, ग) होते हैं, यति बारहवें अक्षर पर और पादान्त में ।

प्राणी है यह सोचता समझता । मैं पूर्ण स्वाधीन हूँ,
इच्छा के अनुकूल कार्य सब मैं । हूँ साध लेता सदा ।
ज्ञाता हैं कहते मनुष्य वश में । है काल-कर्मादि के,
होती है घटना-प्रवाह-पतिता । स्वाधीनता यन्त्रिता ॥

१९—'सवैया' अथवा 'मदिरा' के प्रत्येक चरण में २२, अक्षर क्रम से सात भगण और एक गुरु (भ, भ, भ, भ, भ, भ, भ, ग) होते हैं, यति पादान्त में ।

क्षत्रिन के प्रण जुद्ध जु बादल साजि चढ़े गज बाजन ह्ीं
वैश्य को (क) बानिज और कृषीपनशूद्र के (क) सेवन नीति यही ।
विप्रन के प्रण है जु यही सुख सम्पति सों कछुका जनहीं ।
कै पढ़िबो कि तपोधन ह्वै कन मांगत ब्राह्मण लाज नहीं ॥

दूसरे चरण में 'वैश्य को' और 'शूद्र के' को भगण (ऽ।।) बनाने के लिये 'को' और 'के' को ह्रस्व 'क' की तरह पढ़ना चाहिये । 'सवैया' के सभी भेदों में प्रायः ऐसा होता है ।

२०—'मत्त गयन्द' भी सवैया का ही एक भेद माना जाता है। इसके प्रत्येक चरण में २३ अक्षर, क्रम से सात भगण और दो गुरु, (भ, भ, भ, भ, भ, भ, भ, ग, ग) होते हैं।

पाहन ते पतिनी करि पावन टूक कियो धनु हू हर को रे।
छत्रविहीन करी छन में छिति गर्व हर्यो तिनके वर को रे॥
पर्वत पुंज पुरैन के (क) पात समान तरे अज हूँ धर को रे।
होयँ नरायन हू पै (प) न ये गुन कौन यहाँ नर वानर को रे॥

यहाँ भी तीसरे चरण में के को 'क' और चौथे चरण में 'पै' को 'प' के समान, ह्रस्व, पढ़ना चाहिये क्योंकि लक्षण के अनुसार'—रैन के' और 'हू' पै 'न' का भगण (ऽ।।) होना आवश्यक है।

२१—'दुर्मिल' भी सवैया का एक भेद है। इसके प्रत्येक चरण में २४ अक्षर, आठ सगण, होते हैं, यति पादान्त में।

कलहंस कलानिधि खंजन कंज कछू दिन केशव देखि जिये।
गति आनन लोचन पायन के अनुरूपक से मन मानि लिये॥
यहि काल कराल ते (त) शोधि सबै हठि कै वरषा मिस दूर किये।
अबधौं बिनु प्राणप्रिया रहिहैं कहि कौन हितू अवलंबि हिये॥

यहाँ भी दूसरे चरण में '– ल ते शो –' को सगण (।।ऽ) बनाने के लिये 'ते' को 'त' के समान, ह्रस्व पढ़ना चाहिये।

२२—'कवित्त' अथवा 'मनहर' के प्रत्येक चरण में ३१ अक्षर होते हैं। गुरु, लघु, का कोई स्थिर नियम नहीं है। केवल अन्त का अक्षर अवश्य गुरु होना चाहिये। इस प्रकार के छंदों को

मुक्तक कहते हैं। एक चरण में २६ अक्षरों से अधिक होने से यह 'दण्डक' भी है।

महामोह कन्दनि मैं जगत जकन्दनि में,
दिन दुख दंदनि मैं जात है बिहाय कै।
सुख को न लेस है कलेस सब भाँतिन को,
सेनापति याही ते कहत अकुलाय कै॥
आवै मन ऐसी घरबार परिवार तजौं,
डारौं लोक लाज के समाज बिसराय कै।
हरि जन पुंजनि मैं वृन्दावन कुंजनि मैं,
रहौं बैठि कहूँ तरवर तर जाइ कै॥

२३—'घनाक्षरी' भी एक मुक्तक, 'दण्डक' छंद है। इसके प्रत्येक चरण में ३२ अक्षर होते हैं, अन्त का अक्षर लघु होना आवश्यक है।

जीरण जटायु गीध धन्य एक जिन रोकि
रावण विरथ कीन्हों सहि निज प्राण हानि।
हुते हनुमंत बलवंत तहाँ पाँच जन
दीन्हें हुते भूषन कछुक नर रूप जानि॥
आरत पुकारत ही राम राम बार बार
लीन्हों न छंड़ाय तुम सीता अति भीति मानि।
गाय द्विजराज तिय काज न पुकार लागै
भोगवै नरक घोर चोर को अभयदानि॥

वर्णिक अर्धसम और विषम प्रायः हिन्दी में प्रयुक्त नहीं होते।

सम-मात्रिक छंद

सम-मात्रिक के प्रत्येक चरण में मात्राओं की एक नियत संख्या रहती है; वर्णों की न तो संख्या नियत होती है; न गुरु, लघु का क्रम।

एक चरण में ३२ से अधिक मात्रायें होने पर उसे दण्डक कहते हैं।

वर्णिक के लिये 'वृत्त' और मात्रिक के लिये 'छंद' शब्द का प्रयोग किया जाता है।

मुख्य मात्रिक छंदों के लक्षण और उदाहरण नीचे दिये जाते हैं।

१—'तोमर' के प्रत्येक चरण में १२ मात्रायें होती हैं, और अन्त के दो अक्षर नियम से गुरु, लघु होते हैं।

| | | S S | | S |
तब चले बाण कराल — १२ मात्रा।

S | | | | | | | S |
फुंकरत जनु बहु व्याल। — १२ मात्रा।

S S | | | S S |
कोप्यो समर श्रीराम — १२ मात्रा।

| | | | | | | | | S |
चल विशिख निशित निकाम॥ — १२ मात्रा।

२—'उल्लाला' अथवा 'चन्द्रमणि' के प्रत्येक चरण में १३ मात्रायें होती हैं, यति पादान्त में ।

काव्य कहा बिन रुचिर मति । मति सु कहा बिन ही बिरति ।
बिरतिउ लाल गुपाल भल । चरणनि होय जु रति अचल ॥

'उल्लाला' का एक भेद अर्धसम भी होता है। इसके पहले और तीसरे चरण में १५ मात्रायें, तथा दूसरे और चौथे में १३ मात्रायें होती हैं ।

कहा कवित कहा बिन रुचिर मति । मति सु कहा बिन ही बिरति ।
कह बिरतिउ लाल गुपाल के । चरणन होइ जो प्रीति अति ॥

३—'मधुमालती' के प्रत्येक चरण में १४ मात्रायें होती हैं, यति सातवीं मात्रा पर और पादान्त में ।

यदि हम किसी । भी कार्य को करते हुए । असमर्थ हैं ।
तो उस अखिल । कर्ता पिता के पुत्र ही । हम व्यर्थ हैं ॥

४—'चौपाई' में प्रत्येक चरण में १५ मात्रायें होती हैं, यति पादान्त में । चरण का अन्तिम अक्षर लघु और उससे पहले का गुरु होना आवश्यक है ।

हम चौधरी डोम सरदार
अमल हमारा दोनों पार।

सब मसान पर हमरा राज
कफ़न मांगने का है काज ॥

५—'चौपाई' के प्रत्येक चरण में १६ मात्रायें होती हैं, यति पादान्त में। चरण के अन्त में जगण (।ऽ।) अथवा तगण (ऽऽ।) नहीं आना चाहिये।

बन्दौं संत असज्जन चरना।
दुखप्रद उभय बीच कछु बरना ॥
बिछुरत एक प्रान हरि लेहीं।
मिलत एक दारुन दुख देहीं ॥
परद्रोही कि होइ निहसंका।
कामी पुनि कि रहइ निकलंका ॥
भव कि परहिं परमातम-बिंदक।
सुखी कि होहिं कबहुँ परनिन्दक ॥

ध्यान रखना चाहिये कि केवल दो चरणों से चौपाई पूरी नहीं होती, जैसा कि प्रायः विद्यार्थियों को भ्रम हो जाता है। ऊपर के उदाहरण में केवल दो चौपाइयां हैं। 'चौपई' और 'चौपाई' के पहले, दूसरे चरण तथा तीसरे चौथे चरण मिल कर अर्धाली कहाते हैं।

६—'पद्धरी' अथवा 'पद्धटिका' में प्रत्येक चरण १६ मात्राओं

का होता है, यति पादान्त में। चरण के अन्त में जगण (।ऽ।) आना आवश्यक है।

कर पकरि पीठ हय पर चढ़ाय।
लै चल्यो नृपति दिल्ली सुराय॥
भइ खबरि नगर बाहरि सुनाय।
पद्मावतीय हरि लीय जाय॥

७—'लावनी' में प्रत्येक चरण में २२ मात्रायें होती हैं। यति प्राय: १२ वीं या १३ वीं मात्रा पर और पादान्त में होती हैं, कभी कभी १४ वीं मात्रा पर भी। 'लावनी' में अधिकतर ६ चरण होते हैं, पहले चार चरणों का और अन्तिम दो चरण समान तुकान्त होते हैं। अन्तिम चरण 'स्थायी' कहाता है क्योंकि वह प्रत्येक पद के साथ पढ़ा जाता है।

अब सुख सूरज को उदय नहीं इत ह्वै है
सो दिन फिर इत अब सपनेहूँ नहिं ऐ है।
स्वाधीनपनो बल धीरज सबै नसै है॥
मंगलमय भारतभुव मसान ह्वै जै है।
दुख ही दुख करिहै चारों ओर प्रकासा॥
अब तजहु बीरवर भारत की सब आसा॥१॥
इत कलह विरोध सबन के हिय घर करि है।
मूरखता को तम चारहुँ ओर पसरि है॥

वीरता एकता ममता दूरि सिधरि है।
तजि उद्यम सबही दासवृत्ति अनुसरि है॥
ह्वै जै हैं चारहु बरन शूद्र बनि दासा॥
अब तजहु बीरबर भारत की सब आसा॥२॥

८—'रोला' में प्रत्येक चरण में २४ मात्रायें होती हैं। यति ११ वीं मात्रा पर और पादान्त में।

नव उज्जल जलधार। हार हीरक सीसोहति,
बिच बिच छहरति बूंद। मध्य मुक्तामनि पोहत।
लोल लहर लहि पवन। एक पै इक इमि आवत,
जिमि नर गन मन विविध मनोरथ करत मिटावत॥

९—'गीतिका' का प्रत्येक चरण २६ मात्रा का होता है। यति १४ वीं (कभी कभी १२ वीं) मात्रा पर और पादान्त में। अन्त में लघु-गुरु होना आवश्यक है।

हे प्रभो आनन्द दाता। ज्ञान हमको दीजिये
शीघ्र सारे दुर्गुणों को। दूर हमसे कीजिये।
लीजिये हमको शरण में। हम सदाचारी बनें
ब्रह्मचारी धर्मरक्षक। वीर व्रतधारी बनें॥

१०—'हरिगीतिका' में प्रत्येक चरण २८ मात्राओं का होता है। यति १६ वीं मात्रा पर और पादान्त में। अन्त में लघु-गुरु होना चाहिये।

संसार की समरस्थली में । धीरता धारण करो
चलते हुए निज इष्ट पथ पर । संकटों से मत डरो ।
जीते हुए भी मृतक सम रह । कर न केवल दिन भरो
वर वीर बन कर आप अपनी । विघ्न बाधायें हरो ॥

'गीतिका' के चरणों में प्रारम्भ में दो मात्रायें जोड़ देने से 'हरि गीतिका' बन जाता है ।

११—'सार' ('दोवै' अथवा 'ललितपद') में प्रत्येक चरण २८ मात्राओं का होता है । यति १६ वीं मात्रा पर और पादान्त में । अन्त के दो अक्षर गुरु होते हैं ।

प्रकटहु रविकुल रवि निशि बीती । प्रजा कमल गन फूले ।
मन्द परे तारा रिपुगन सम । जनभय तम उनमूले ।
नसे चोर लम्पट खल लखि जग । तुव प्रताप प्रकशायो
मागध बंदी सूत चिरैयन । मिलि कल रोर मचायो ॥

१२—'चवपैया' का प्रत्येक चरण ३० मात्राओं का होता है । यति १० वीं और १८ वीं मात्रा पर तथा पादान्त में । अन्त में एक गुरु होना आवश्यक है; इसके पहले प्रायः एक सगण (। । ऽ) भी होता है ।

भे प्रकट कृपाला । दीन दयाला । कोसल्या हितकारी ।
हर्षित महतारी । मुनि मन हारी । अद्भुत रूप निहारी ।
लोचन अभिरामा । तनु घनश्यामा । निज आयुध भुजचारी ।
भूषन वनमाला । नयन विशाला । शोभासिंधु खरारी ॥

पहली दोनों यतियाँ प्रायः तुकान्त होती हैं।

१३—'त्रिभंगी' में प्रत्येक चरण ३२ मात्राओं का होता है। यति १० वीं, १८ वीं २६ वीं मात्रा पर और पादान्त में। अन्त में गुरु होना आवश्यक है।

परसत पद पावन। शोक नसावन। प्रकट भई तप। पुंज सही
देखत रघुनायक। जन सुखदायक। संमुख ह्वै कर। जोरि रही।
अति प्रेम अधीरा। पुलक शरीरा। मुख नहिं आवै। बचन कही
अतिशय बड़ भागी। चरणनि लागी। जुगल नयन जल। धार बही॥

'चवपैया' की तरह इसकी भी पहली दो यतियों में तुक होती है। कभी कभी तीनों यतियाँ तुकान्त होती हैं।

अर्ध सम मात्रिक

अर्धसम मात्रिक में पहले और तीसरे तथा दूसरे और चौथे चरणों में मात्राओं की समान संख्या रहती है। पहले और तीसरे चरण 'विषम' तथा दूसरे और चौथे 'सम' कहाते हैं।

१—'बरवै' के विषम चरण १२ मात्राओं के तथा सम चरण ७ मात्राओं के होते हैं। अर्धभाग के अन्त में प्रायः जगण (।S।) आता है।

नाम भरोस नाम बल
नाम सनेहु।
जनक जनम रघुनन्दन
तुलसिहिं देहु॥

२—'दोहा' के विषम चरण १३ मात्राओं के और सम चरण ११ मात्राओं के होते हैं। अर्धभाग का अन्तिम अक्षर गुरु होना आवश्यक है। पहला और तीसरा चरण जगण (। ऽ ।) से प्रारम्भ होना नहीं चाहिये ।

रामचरण अवलम्ब बिनु
परमारथ की आस ।
चाहत बारिद बुंद गहि
तुलसी उड़न अकास ॥

यहाँ पहले और तीसरे चरण के आदि में भगण (ऽ । ।, 'रामच–' और 'चाहत') है, जगण नहीं ॥

३—'सोरठा' दोहे का उलटा होता है। विषम चरणों में ११ मात्रायें और सम चरणों में १३ मात्रायें होती हैं। पहले और तीसरे चरणों में तुक होना चाहिये, ऊपर के दोहे में प्रत्येक अर्धभाग को उलटने से सोरठा बन सकता है।

परमारथ की आस
रामचरण अवलम्ब बिनु।
तुलसी उड़न अकास
चाहत बारिद बुंद गहि ॥

अन्य उदाहरण–

मूक होहिं वाचाल ।
पंगु चढ़ै गिरिवर गहन ॥

जासु कृपा सु दयाल ।
द्रवहु सकल कलिमल दहन ॥

विषम मात्रिक छंद

विषम मात्रिकों के दो भेद हैं। एक जिनमें चारों चरणों में मात्राओं की संख्या आदि भिन्न भिन्न हों । इस प्रकार के छंद बहुत कम प्रयुक्त होते हैं। दूसरे वे छंद जिनमें चार से कम या अधिक चरण होते है। 'छप्पय' और 'कुंडलिया' छंदों में ६ चरण होने से इन्हें विषम में माना जाता है।

'छप्पय' में पहले चार चरण 'रोला' के और अन्तिम दो चरण 'उल्लाला' के होते हैं।

सर सर हंस न होत। बाजि गजराज न दर दर
तर तर सुफर न होत। नारि पतिव्रता न घर घर।
मनमन सुमति न होत। मलैगिरि होत न बन बन
फनफन मनि नहिं होत। मुक्तजल होत न घन घन। } रोला

रन रन सूर न होत हैं। जन जन होत न भक्ति हरि।
नर सुनो सकल नरहरि कहत। सब नर होत न एक सरि॥ } उल्लाला

'कुंडलिया' में पहले दो चरण 'दोहा' के और अन्तिम चार 'रोला' के होते हैं। इस प्रकार प्रत्येक चरण में २४ मात्रायें होती हैं। दूसरे चरण का उत्तरार्ध तीसरे चरण का पूर्वार्ध होता है। छंद का प्रथम और अन्तिम शब्द एक ही होता है।

कोई संगी नहिं उतै। है इत ही को संग
पथी लेहु मिल ताहि ते। सब सों सहित उमंग। } दोहा

सबसों सहित उमंग। बैठि तरनी के मांहीं
नदी नाव संयोग। फेरि यह मिलिहै नाहीं।
बरनै दीन दयाल। पार पुनि भेंट न होई
अपनी अपनी गैल। पथी जै हैं सब कोई॥ } रोला

'सब सों सहित उमंग' दूसरे चरण का उत्तरार्ध और तीसरे चरण का पूर्वार्ध है। 'कोई' शब्द आदि और अन्त में है।